सतगुरु मिलै त उबरै बाबू

● बाबा श्रीशाही स्वामीजी महाराज

परमाराध्य सन्त सद्गुरु **महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज** के हृदयस्वरूप बाबा श्रीशाही स्वामीजी महाराज का यह प्रवचन दिनांक २४-४-१९७७ ई०, रविवार को महर्षि मेँहीँ आश्रम, कुप्पाघाट, भागलपुर-३ में साप्ताहिक सत्संग के अवसर पर हुआ था। — सम्पादक

मंगल मूरति सतगुरू, मिलवैं सर्वाधार। मंगलमय मंगल करण, विनवौं बारम्बार ॥
ज्ञान-उदधि अरु ज्ञान-घन, सतगुरु शंकर रूप। नमो-नमो बहु बारही, सकल सुपूज्यन भूप ॥

उपस्थित सत्संगप्रेमी महानुभावो, माताओ एवं बहनो !

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में पढ़िये— कागभुशुण्डिजी पूर्व किसी जन्म में दांभिक और धनी शूद्र थे। उन्होंने एक पवित्र शैव ब्राह्मण से शिव-मंत्र लेकर उन्हें अपना गुरु बनाया था। एक दिन कागभुशुण्डिजी शिव मंदिर में बैठकर शिव-मंत्र का जप कर रहे थे। उसी समय उनके गुरु वहाँ आ गये। कागभुशुण्डिजी ने उठकर उन्हें अभिमानवश प्रणाम नहीं किया। उनके इस अशिष्ट व्यवहार से गुरु तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुए— वे पूर्ववत् शांत-स्थिर बने रहे; पर शिवजी को यह गुरु-अपमान सहन नहीं हुआ। उन्होंने आकाशवाणी के द्वारा कागभुशुण्डिजी को अजगर बनकर वृक्ष के एक कोटर में पड़े रहने का शाप दे दिया। इस शाप को सुन कर दयार्द्रहृदय गुरु हाहाकार कर उठे और अपने शिष्य की शाप-मुक्ति के लिये शिवजी से विनती की। शिवजी ने उनकी साधुता से प्रसन्न होकर कहा— "मेरा शाप तो व्यर्थ नहीं जायेगा। इसे एक हजार वर्ष पर्यन्त शाप भोगना पड़ेगा; लेकिन जनमने-मरने से साधारण जीवों को जो दुःख हुआ करता है, वह इसको नहीं होगा।"

संत ऐसे ही कारुणिक होते हैं। भगवान् श्रीराम ने कहा है— "मोतें अधिक संत करि लेखा।" पहले जानना चाहिये कि संत किसे कहते हैं? किसी की बड़ाई जानने के बाद ही उसमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। संत वे होते हैं, जो दूसरों के दुःख से दुःखी और दूसरों के सुख से सुखी हो जाते हों—

पर दुःख दुःख सुख सुख देखे पर।
संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन्ह पै कहइ न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥

कवियों ने संत-हृदय की तुलना मक्खन से की है; पर यह उपमा ठीक नहीं बैठती। मक्खन अपनी गर्मी से पिघलता है अर्थात् जब इसे तपाया जाता है, तब वह द्रवित होता है। संतों के हृदय ऐसे नहीं होते। उनके कोमल हृदय अपने दुःख से नहीं, बल्कि दूसरों को संतप्त देख कर पिघलते हैं— दया से भर जाते हैं।

लोगों के क्लेश देख कर संतों के हृदय में बड़ी पीड़ा होती है। वे उनके कष्ट दूर करने के लिये व्यग्रचित्त रहते हैं। भव-ताप से तप्त लोगों के बीच जा-जाकर खुद कठिनाई और बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलते हुए उन्हें कल्याण का उपदेश करते हैं; उन्हें दुःखों से छुड़ाना चाहते हैं; उन्हें चेताते हैं— लोगो ! देखो, जितने शरीर हैं, उन सबमें तुम्हारा मानव शरीर विशेष है। यह इसलिये नहीं कि तुम्हारा शरीर आकार-प्रकार में बड़ा दर्शनीय है; वरन् इसलिये कि इस शरीर में रहकर तुम वह काम कर सकते हो, जो किसी दूसरे शरीर में नहीं हो सकता। आवागमन से छूटने का उपाय इसी शरीर में

रहकर किया जा सकता है। इसीलिये इस शरीर को सुरदुर्लभ कहा गया है—

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर-दुर्लभ सब ग्रन्थहि गावा॥

—रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

आज चन्द्रलोक तथा अन्य ग्रह पर कोई गया, तो मनुष्य ही गया। यह बौद्धिक चमत्कार मनुष्य ने ही दिखाया— किसी पशु-पक्षी या किसी कीड़े-मकोड़े ने नहीं। हम बहुत से देवी-देवताओं के नाम सुनते हैं, सुनते हैं कि अमुक ने ऐसे ऊँचे पद प्राप्त किये थे; वे सब कौन थे? वे लोग हमीं जैसे साधारण जीव थे, जो तपस्या करके वैसे हो गये। इतना ही नहीं, ईश्वर की भक्ति करके ईश्वर तक हो गये—

जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई।

ऐसे अनमोल शरीर पाकर अगर हम भी वही कर्म करें, जो अन्य शरीरधारी करते हैं, तो हमारे शरीर की विशिष्टता क्या रही!

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं नराणामधिकं विशेषो,
ज्ञानेनहीनाः पशुभिः समानाः॥

(उत्तरगीता, अ० २, श्लोक ४४)

विषय-सुख में लगकर जीवन खपाना उत्तम बात नहीं है। ऐन्द्रिक सुख तो हर शरीर में मिलता है। मनुष्य-शरीर पाकर इससे भी वही सुख लें, तो इसकी श्रेष्ठता क्या, इसकी महिमा क्या! संत कहते हैं, समझो, इसकी सार्थकता किसमें है। संत कबीर कहते हैं—"आपन काज सँवारु रे।"

अपना कर्त्तव्य कर्म क्या है, इस शरीर में आकर हमें क्या करना चाहिये— इन बातों पर विचार करो, नहीं तो—

मन पछितैहैं अवसर बीते।

— गो. तुलसीदासजी

कुछ काम में कुछ नींद में कुछ भोग में खोया।
आया समय जब मौत का सोचकर रोया॥

— संत कबीर साहब

कर्त्तव्य कर्म नहीं करोगे— अपना काम नहीं करोगे, तो पीछे पछताना पड़ेगा— रोना पड़ेगा।

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ॥

—रामचरितमानस

संत-महात्मा कहते हैं कि अधोगति में जाना न पड़े, पीछे सिर धुन-धुन कर पछताना न पड़े; इसके लिये निज काम करो। जो काम आपके बिना नहीं हो सकें, वही आपका निज काम है। खेती, दुकानदारी, फैक्ट्री आदि के काम आपके नहीं रहने पर भी चलते रह सकते हैं। आपने अपनी इमारत पूरी नहीं कर पायी— चल बसे, तो आपके भाई-भतीजे, बेटे व सगे-संबंधी उसे पूरी कर लेंगे; लेकिन आपका अपना काम दूसरा कोई भी पूरा नहीं कर सकता। फर्ज कीजिये, आप बीमार हैं, आपको औषधि खाने की आवश्यकता है, तो क्या दूसरे के औषधि खा लेने से आपकी बीमारी दूर हो जायेगी? स्वास्थ्य-लाभ करना है, तो दवा आपको खानी पड़ेगी— चिकित्सा आपको करवानी होगी। भूख मिटाने के लिए भोजन आपको करना पड़ेगा। दूसरे के खा लेने से भी कहीं किसी की भूख मिटी है? आप अपने कर्त्तव्य के बारे में सोचिये। आपके सिर पर भारी बोझा हो, उसके भार से आप दबे जा रहे हों, हो सकता है कोई दयालु पुरुष आपका बोझा अपने माथे पर लेकर आपका माथा हलका कर सके; आप ऋण-ग्रस्त हैं, कोई आपको ऋण-ग्रस्तता से रुपये देकर अथवा कोई अन्य चीज देकर मुक्त कर सके; पर यह निश्चित रूप से मन में बिठा लीजिये कि आवागमन से आपको कोई दूसरा नहीं छुड़ा सकता, इसके लिये आपको खुद ही प्रयत्नशील होना पड़ेगा।

आवागमन सम दुःख दूजा, है नहीं जग में कोई।
इसके निवारण के लिये, प्रभु-भक्ति करनी चाहिये॥

—महर्षि मेँहीँ परमहंसजी महाराज

आवागमन से मुक्त होने के लिए ईश्वर-भक्ति करना ही अपना काम है। शरीर-बंधन में नहीं आते, तो इससे संबंधित दु:ख नहीं उठाना पड़ता। हम बहुत-से बंधनों से जकड़े हुए हैं। पहला बंधन अपना यह शरीर ही है—'पहला बंधन पड़ा देह का।'

जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो।
तब तें देह गेह निज जान्यो॥
मायाबस स्वरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुण दु:ख पायो॥

—विनय-पत्रिका

भौतिक उपलब्धि अल्पकालीन है। बड़ी सम्पत्ति है, सुसभ्य और कुलीन परिवार है, सर्वव्यापिनी ख्याति है; ये सब-के-सब यहीं छूट जाएँगे—

धनानि भूमौ पशवोहि गोष्ठे
नारि गृहाद्वारि सखा श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
धर्मानुगोगच्छति जीव एकः॥

—वैराग्य शतक

सम्पत्ति भूमि के नीचे ही गड़ी रह जाएगी; पशु पशुशाला में बँधे रह जाएँगे; नारी गृहद्वार तक जाएगी, बन्धु-बान्धव श्मशान तक साथ देंगे; देह चिता पर रह जाएगी। साथ वही जाएगा, जो आपने अपने जीवन-क्षेत्र में कर्मों के शुभ-अशुभ बीज बोये हैं। कर्म-संस्कार साथ जाएगा, जो भावी जीवन की भूमिका तैयार करता है। यह वर्त्तमान जीवन— यह हमारी वर्त्तमान स्थिति हमारे ही पूर्वकृत कर्मों का परिणाम है। प्रचुर सम्पत्ति और सुंदर शरीर पाकर फूल जाना ठीक नहीं—

जा शरीर माँहि तू अनेक सुख मानि रह्यो,
ताहि तूँ विचार या में कौन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग-रग में रक्त भर्‌यो,
पेट हूँ पिटारी-सी में ठौर-ठौर मली है॥
हाड़न सूँ भर्‌यो मुख हाड़न के नैन नाक,
हाथ पाँव सोऊ सब हाड़न की नली है।
'सुंदर' कहत याहि देखि जनि भूलै कोई,
भीतर भंगार भरी ऊपर से कली है॥

शरीर ऐसा है, तो संसार कैसा है? यह सोचिए। कर्म में लग जाइए। अपने को संसार बंधन से छुड़ा लीजिए।

तब हम ऐसे अब हम ऐसे, यही जनम का लाहा।

—संत कबीर साहब

सृष्टि के पूर्व जैसे हम परमात्म-स्वरूपी थे, वैसे ही फिर परमात्मा में मिलकर एकमेक हो जाएँ, यही इस जीवन का लाभ है।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोउ करइ उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई।
रहि न सकई हरि भगति बिहाई॥

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि यदि मोक्ष-सुख चाहते हो, तो हरि-भक्ति करो। भक्ति के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। कुछ ऐसा करो, जिससे प्रभु रीझ जाएँ—

अँखिया लागि रहन दो साधो हिरदे नाम सम्हारा।
रीझै बूझै साहिब तेरा, कौन पड़ा है द्वारा॥
जम जालिम के सब डर मिटिगे जा दिन दृष्टि निहारा।

—संत कबीर साहब

प्रभु तुम्हारे काम से रीझ जाएँगे, तो यम-जालिम के सब भय दूर हो जायेंगे। वह कौन-सा काम है, जिससे प्रभु प्रसन्न हो जाएँ? कोई तब प्रसन्न होता है, जब उसे अपने मनोनुकूल पदार्थ मिल जाता है। प्रिय की प्राप्ति में प्रसन्नता आती है। प्रभु क्या चाहते हैं? प्रभु हम-आपको चाहते हैं और कुछ नहीं। वे तो पूर्णकाम हैं। हम अपने को उन पर न्योछावार कर दें, यही उनकी प्रसन्नता का कारण होगा। ठाकुरबाड़ी में मूर्त्ति के सामने बैठकर हम उसकी पूजा करते हैं, उसके ऊपर फूल चढ़ाते हैं। फूल तो एक माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने

मन को मूर्त्ति पर चढ़ाते हैं। जिस दिन फूल तो चढ़ाते हैं, पर उसके साथ मनोयोग नहीं रहता– मन नहीं चढ़ता, तो कहते हैं कि आज ठीक से पूजा नहीं हुई। उस दिन मन की प्रसन्नता भी जाती रहती है– संतुष्टि भी नहीं मिलती है।

भगति सुतंत्र सकल गुन खानी।
बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी॥

भक्ति अपने तईं करने की है– वह नौकर-नौकरानियों से नहीं करवायी जा सकती। हमारी इन्द्रियाँ हमारी नौकरानियाँ हैं, इनसे प्रभु की भक्ति नहीं हो सकती। अपनी आत्मा को परमात्मा पर न्योछावर कर दीजिए, यही ऊँचे दर्जे की भक्ति है–

मिलि परमातम सों आतमा, परा भक्ति 'सुंदर' कहै।

प्रश्न उठता है कि वे प्रभु कहाँ हैं? उनकी पहचान हुए बिना उन पर न्योछावर कैसे हुआ जा सकता है? संत कबीर साहब कहते हैं–

संपटि मांहिं समाइया, सो साहिब नहिं होइ।
सकल मांड में रमि रह्या, साहिब कहिये सोइ॥
रहै निराला मांड थैं, सकल मांड ता माँहिं।
'कबीर' सेवै तास कूँ, दूजा कोई नाहि॥

प्रभु के दर्शन के लिए लोग तीर्थों की खाक छानते हैं, मूर्त्तियों के दर्शन करते हैं। मूर्त्तियों के दर्शन करके विश्वास नहीं होता कि प्रभु के दर्शन हुए। इसलिए उनसे प्रत्यक्ष दर्शन देने की प्रार्थना करते हैं। वे प्रभु सब के बाहर हैं और सबके भीतर भी।

प्रकृति पार प्रभु उर सब बासी।
ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥

परमात्मा बाहर में और अपने अंदर भी हैं। प्रत्यक्षता अपने अंदर होगी। उनकी पहचान आत्मदृष्टि से होगी– चर्मदृष्टि से नहीं–"चाम चश्म सों नजरि न आवै, खोजु रुह के नैना।"

जीवात्मा पर माया की तह-दर-तह कई पट्टियाँ पड़ गयी हैं। अंदर चलने से वे पट्टियाँ उतरती जाएँगी। सारी पट्टियों के उतर जाने पर आत्मदृष्टि प्राप्त होगी, जिससे प्रभु के दर्शन किये जा सकेंगे। किसी की आँखों पर कई पट्टियाँ बंधी हों, तो वह एक-एक करके उसे उतारेगा। धीरे-धीरे उसके सामने का अंधकार पतला होता जाएगा। पूरी पट्टियों को उतार फेंकने पर अंधकार उसके सामने कुछ भी नहीं रहेगा– पूरे प्रकाश में ही वह किसी चीज को देख सकेगा। हमारे ऊपर अंधकार, प्रकाश और शब्द की त्रिविध पट्टियाँ हैं। इन्हें उतार देने पर ही प्रभु का साक्षात्कार होगा। साधना करके निःशब्द में ही प्रभु पर अपने को आत्म-निवेदित कर सकेंगे।

ऐसी सेवकु सेवा करै। जिसका जीउ तिसु आगै धरै॥
–गुरु नानक साहब

अपने अंदर चलने के लिए सीखना पड़ता है। संसार का साधारण ज्ञान भी गुरु के बिना लोग नहीं सीख पाते हैं–

सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाँहि।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलैं, समझ देख मन माहिं॥

हम देखते हैं, जो कोई नौकरी करते हैं, उन्हें भी पहले ट्रेनिंग लेनी पड़ती है। ट्रेनिंग लिये बिना उस काम के योग्य नहीं बनते हैं। सिखानेवाले से सीखिए। महायोगी गोरखनाथ ने बड़ा अच्छा कहा है–

सप्त धातु का काया प्यंजरा,
ता माहिं जुगंति बिन सूवा।
सतगुरु मिलै त उबरै बाबू,
नहिं तौ परलै हूवा॥

सद्गुरु की युक्ति जाने बिना जीव शरीर में सृष्टि के आदि काल से ही फँसा हुआ है। उबरने के लिए गुरु-युक्ति से साधन कीजिए।

बोलिये श्रीसद्गुरु महाराज की जय!